International Journal of Sanskrit Research 2023; 9(2): 242-246

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2023; 9(2): 242-246
© 2023 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 22-12-2022
Accepted: 26-01-2023

सत्येन्द्र लोधी
पीएच. डी. शोधार्थी, संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत

Corresponding Author:
सत्येन्द्र लोधी
पीएच. डी. शोधार्थी, संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत

प्लवङ्गदूतम् में अलङ्कार विमर्श

सत्येन्द्र लोधी

सारांश
अलंकार शब्द लोक में आभूषण का वाचक है और ये आभूषण मानव शरीर के सौन्दर्य में अभिवृद्धि करते हैं ठीक इसीप्रकार काव्यालंकार भी शब्दार्थ के सौन्दर्य में वृद्धि करते हैं। परन्तु ये अलंकार जहाँ कहीं भी धारण करने पर शोभा में अभिवृद्धि नहीं करते हैं अतः इन अलंकारों के उचित सन्निवेश को ही साधु माना गया है। इसलिए वही कवि अच्छा माना जाता है जो अपनी रचना में इन अलंकारों का रसानुकूल प्रयोग करता है। अलङ्कारों के उचित समायोजन से काव्यसौन्दर्य में चमत्मकार उत्पन्न होता है इसी हेतु प्रायः पूर्वकाल से ही कवियों ने अपनी–अपनी कृतियों में स्वसामर्थ्यानुसार अलङ्कारों का प्रयोग किया है। आचार्य वनेश्वर पाठक ने अपनी विरह कविता में शब्दालङ्कार तथा अर्थालङ्कार दोनों का प्रयोग किया है। इस शोध पत्र का उद्देश्य आचार्य वनेश्वर पाठक की कृति प्लवङ्गदूतम् में अलंकार–योजना का अध्ययन प्रस्तुत करना है। अतः अलंकार के लक्षणों को प्रस्तुत करते हुए शोधार्थी के द्वारा इस काव्य के कुछ पद्यों का अध्ययन का प्रयास किया गया है।

कूटशब्दः अलङ्कार, वनेश्वर पाठक, प्लवङ्गदूतम्, सहृदय, उपमा, अनुप्रास

प्रस्तावना
काव्यशोभा का वर्धापन करने वाले तत्व अलङ्कार कहे गए हैं । अलङ्कारों का त्रिविधरूप से विभाजन प्राप्त होता है – १. शब्दालङ्कार २. अर्थालङ्कार ३. उभयालङ्कार

शब्दालङ्कार - जो शब्द पर आश्रित होते हैं। शब्द का परिवर्तन हो जाने पर या उस शब्द के किसी पर्यायवाची शब्द को उसके स्थान पर रख देने पर वहाँ शब्दरूपी चमत्कार नहीं रहता है। कहने का तात्पर्य है कि जो शब्द के परिवर्तन को सहन नहीं (परिवृत्त्यसहत्व) कर पाता है वह शब्दालङ्कार हैं। आचार्य मम्मट ने अनुप्रास, यमक, वक्रोक्ति, श्लेष, चित्र और पुनरुक्तवदाभास नामक छः अलङ्कार माने हैं।[1]

अर्थालङ्कार - जो अर्थ पर आश्रित है। जहाँ किसी शब्द के पर्यायवाची शब्द रख देने पर (शब्दपरिवृत्तिसहत्व) भी वहाँ अर्थरूपी चमत्कार बना रहता है। वे अर्थालङ्कार हैं। काव्यप्रकाशकार मम्मट ने ६१ अर्थोलङ्कारों को बताया है।

[1] का. प्र.- श्रीनिवास शास्त्री पृ॰ सं॰ ४३३

उभयालङ्कार - जो अलङ्कार शब्द और अर्थ दोनों पर आश्रित होते हैं वे उभयालङ्कार कहे जाते हैं।[2]
अलङ्कारों के उचित समायोजन से काव्यसौन्दर्य में चमत्मकार उत्पन्न होता है, इसी हेतु प्रायः पूर्वकाल से ही कवियों ने अपनी–अपनी कृतियों में स्वसामर्थ्यानुसार अलङ्कारों का प्रयोग किया है। आचार्य वनेश्वर पाठक ने अपनी विरह कविता में शब्दालङ्कार तथा अर्थालङ्कार दोनों का प्रयोग किया है। आचार्य वनेश्वर पाठककृत प्लवङ्गदूतम् के पद्यों में प्राप्त अलङ्कारों की योजना द्रष्टव्य है –

प्लवङ्गदूतम् में प्रयुक्त शब्दालङ्कार -

अनुप्रासालङ्कार - वर्णों की समानता को अनुप्रास अलङ्कार कहते हैं। रसभावादि के अनुकूल वर्ण तथा शब्दों की इस प्रकार की योजना करना कि उनके बीच अधिक व्यवधान न हो अनुप्रास अलङ्कार है। यह दो प्रकार का होता है वर्णानुप्रास तथा शब्दानुप्रास। वर्णानुप्रास के भी दो भेद होते हैं- छेकानुप्रास तथा वृत्यानुपास। छेकानुप्रास में अनेक व्यञ्जन वर्णों की एक बार समानता होती है और वृत्त्यानुप्रास में एक अथवा अनेक व्यञ्जन वर्णों की अनेक बार समानता होती है।[3] शब्दानुप्रास वहाँ होता है जहाँ केवल तात्पर्यमात्र का ही भेद होता है किन्तु शब्द समान होते हैं। यह शब्दानुप्रास लाटानुप्रास कहलाता है।[4]

छेकानुप्रास –

आसन्नायां शरदि कमलामोदसम्पूरितायां, दूरीभूतां
हृदयदयितां हर्षसंदोहदात्रीम्।
स्मारं स्मारं विकलकरणो ध्यानमग्नः स तन्वीं, शोकाम्भोधिं
नयनसलिलैर्वर्धयामास शश्वत्॥ [5]

इस उपर्युक्त पद्य में हृदयदयिता में दय् दय्, स्मारं स्मारम् तथा विकलकरणो में रलयोरभेदः नियम के अनुसार कल कल की सकृत् आवृत्ति होने से छेकानुप्रास अलङ्कार है।

तत्रापश्यद् विविधविधिना सज्जिते मण्डपेऽसौ,
श्रीमद्रामप्रथितचरितं श्रोतुमुत्कान् सुभक्तान्।
भक्त्या सोऽपि प्रणयिहृदयो रामभक्तस्तु तत्र,
स्थित्वाऽश्रौषीच्छ्रवणमधुरां तां कथां वाच्यमानाम्॥ [6]

प्रस्तुत् श्लोक में विविधविधिना पद में विध् विध् की एक बार आवृत्ति होने से छेकानुप्रास अलङ्कार है।
इसी प्रकार श्लोक संख्या १।२३, २४, ३३, ४४ तथा २।२७ में छेकानुप्रास का प्रयोग हुआ है।

वृत्यनुप्रास -

दूतकाव्य परम्परा के "प्लवङ्गदूतम्" इस काव्य में प्रथम पद्य में अलङ्कारावलोकन करने से स्पष्ट है कि कवि का अपृथग्यत्नतया अलङ्कारों का स्थापन स्फुटतया प्रतीत होता है। यहाँ प्रयुक्त अनुप्रास दर्शनीय है –

कश्चिद् भृत्यावशमुपगतो भारतीयः स्वदेशाद्, गत्वा पत्न्या
सह निवसतिं पाकभूमावकार्षीत्।
तत्रैवासौ सुखमधिवसन् राजकीयञ्च कार्यं, कुर्वन्
पाकाधिपतिप्रहितः काशिमागत्य तस्थौ॥ [7]

उपर्युक्त श्लोक में तकार, वकार एवं पकार वर्णों की अनेक बार आवृत्ति हुई है। अतः यहाँ वृत्यनुप्रास अलङ्कार है।
इसी प्रकार अन्य श्लोकों में भी यह अलङ्कार स्पष्टरुप से देखा जा सकता है –

जाते चैवं विषमसमये दूरसंस्थां प्रियां स्वां, प्रत्यागन्तुं
कथमपि च स प्राभवन्न प्रवासी। चिन्ताचक्राकुलितहृदयः
स्वानि भाग्यानि निन्दन्, मासोऽनैषीत् कतिचिदवशो
विप्रयुक्तः स्वपत्न्या॥ [8]

उपर्युक्त श्लोक में प्रियाम्, प्रत्यागन्तुम्, प्राभवन्, प्रवासी में प्र की तथा चिन्ता तथा चिन्ताचक्र में चकार की और स्वानि भाग्यानि निन्दन् में नकार की अनेक बार आवृत्ति होने वृत्यनुप्रास अलङ्कार है।

---

[2] वही- श्रीनिवास शास्त्री पृ॰ सं॰ ४३२–३३

[3] वर्णसाम्यमनुप्रासः छेकवृत्तिगतो द्विधा ।
सोऽनेकस्य सकृतपूर्वः एकास्याप्यसकृतपरः। वही ९।७९

[4] शाब्दस्तु लाटानुप्रासो भेदे तात्पर्यमात्रतः। वही ९।८१ श्रीनिवास शास्त्री पृ॰ सं॰ ४३८

[5] प्लव. १।५

[6] वही १।१८

[7] वही १।१

[8] वही १।२

प्लवङ्गदूतम् में अर्थालङ्कार

उपमालङ्कार - उपमान और उपमेय का भेद होने पर साधर्म्य (सादृश्य) का कथन उपमालङ्कार है।[9] उपमा सर्वाधिक चमत्कारपूर्ण अलङ्कार है। यहाँ पर चमत्कार सादृश्य पर आधारित होता है और सादृश्य दो वस्तुओं (उपमान-उपमेय) में पाया जाता है। यहाँ पर कार्य-कारण आदि के समान धर्म को उपमा नहीं कहते अपितु उपमान-उपमेय के साधारण धर्म के होने पर ही उपमा होती है।[10]
उपमा अलङ्कार के चार अङ्ग हैं –१.उपमान २.उपमेय ३.साधारणधर्म ४.उपमावाचक शब्द

प्लवङ्गदूतम् में प्राप्त उपमालङ्कार के उदाहरण इस प्रकार हैं –

स्वान्तर्भक्त्या प्रबलतरया तस्य देवस्य पूजां, कृत्वाऽत्मानं
शुचिमथ परं मन्यमानस्तदानीम्।
बद्ध्वा हस्तौ कमलसदृशौ प्रार्थनायाम् शिवस्य, शोकोद्वेगात्
सजलनयनः सोऽब्रवीदल्पमेव॥ [11]

प्रस्तुत श्लोक में उपमालङ्कार का प्रयोग हुआ है। यहाँ पर प्रयुक्त "कमलसदृशौ हस्तौ" ये पद उपमा के द्योतक हैं। उपमा के नियमानुसार यहाँ हस्त उपमेय है एवं उपमेय के सादृश्य के लिए कमल को उपमान बनाया गया है एवं उपमावाचक **"सदश"** शब्द का प्रयोग हुआ है। यहाँ उपमेय-उपमान व वाचक शब्द इन तीनों की शब्दतः उपात्तता होने से तथा साधारण धर्म की अर्थोपात्तता होने के कारण धर्मलुप्तोपमा है।
प्रकृत पद्य विप्रलम्भ का उपकारक न होकर देवविषयक रति का उपकारक है क्योंकि कमलपुष्प देवपूजा की सामग्री का अंग है, यहाँ पूजा के लिये जुड़े हस्त को कमल से उपमित करने में कमल का कोरकत्व ध्वनित होता है साथ ही इससे पूजा के लिये किसी बाह्य सामग्री की आवश्यकता का अभाव भी ध्वनित होता है क्योंकि जुड़े हुये कोमल लाल हाथ ही पूजनसामग्री में कमलपुष्प की आवश्यकता की पूर्ति करते प्रतीत होते हैं।

श्रेष्ठान्यासन्निह गृहवरे यानि रत्नानि पूर्वं,
गौराङ्गोऽसावदयहृदयस्तान्यहार्षीत् सयत्नम्।
वाचाऽलंवा सरलमतिके भारते यद् यदासीत्, तत् तल्लोभाद्
गजनिसदृशः सोऽयमेवं जहार॥ [12]

यहाँ पद्य के अन्तिम चरण में उपमालङ्कार का प्रयोग हुआ है। यहाँ अयं पद से अन्वित "गौराङ्ग" उपमेय का "गजनी" उपमान से "सदृश" उपमावाचक शब्द के द्वारा "हरणशीलत्व" साधारणधर्म से साधर्म्य वर्णित है। अतः यहाँ उपमा के सभी चार अङ्गों का शब्द से उपादान किया है, अतः यहाँ पूर्णोपमालङ्कार है।

दिल्लीं गत्वा भरतवसुधां सेन्दिरामेव कर्तु-माविर्भूता
सकलजनतारक्षणार्थं जगत्याम्।
देशस्यास्य प्रथममहिलामन्त्रिणी या प्रधाना, वन्द्याऽवश्यं
सपदि भवता त्विन्दिरेवेन्दिरा सा॥ [13]

इस श्लोक में उपमा अलङ्कार प्राप्त है। इस पद्य के अन्तिम चरण में प्रयुक्त "इन्दिरेवेन्दिरा" पद उपमा की प्रतीति करा रहे हैं। यहाँ कवि के द्वारा "इन्दिरा" अर्थात् इन्दिरा गाँधी उपमेय का "इन्दिरा" (लक्ष्मी) उपमान के साथ सादृश्य दिखाया गया है। इसमें उपमावाचक "इव" शब्द का प्रयोग किया गया है तथा "ऐश्वर्य" साधारण धर्म है, जो कि अर्थतः गृहीत है अतः साधारण धर्म के लुप्त होने के कारण "धर्मलुप्तोपमा" अलङ्कार है। "इन्दिरेवेन्दिरा" में "उपमानोपमेयत्वे एकस्यैवैकवाक्यगे" अर्थात् एक वाक्य में एक ही के उपमान और उपमेय होने पर अनन्वय होता है। इस नियमानुसार यहाँ "इन्दिरा" एक ही पद को उपमेय एवं उपमान बनाए जाने से अनन्वय अलङ्कार भी है।
इसी प्रकार २।३१, २।२९, २।१७, २।२, १।८० आदि पद्यों में भी उपमालङ्कार प्राप्त होता है।

काव्यलिङ्गालङ्कार - आचार्य मम्मट के अनुसार जब कारण की वाक्यार्थता या पदार्थता होती है तब काव्यलिङ्गालङ्कार होता है ।[14] तात्पर्य यह है कि एक वाक्य में कारण और कार्य दोनों वर्णित रहते हैं। कार्य का कारण जब वाक्यरूप में उपस्थित होता है या पदार्थरूप में

[9] साधर्म्यमुपमा भेदे। का. प्र. १० सू. सं. १२५
[10] उपमानोपमेययोरेव न तु कार्यकारणादिकयोः साधर्म्यं भवतीति तयोरेव समानेन धर्मेण सम्बन्ध
उपमा। वही
[11] प्लव. १।१०
[12] वही १।६१
[13] वही १।६२
[14] काव्यलिङ्गं हेतोर्वाक्यपदार्थता। का. प्र. १०।११४ श्रीनिवास शास्त्री पृ॰ सं॰ ५४८

उपस्थित होता है। कहने का भाव है कि जब श्लोकों में कारण कार्यभाव वाक्यार्थ या पदार्थ के रूप में होता है, तो काव्यलिङ्ग अलङ्कार होता है।

कश्चिद् भृत्यावशमुपगतो भारतीयः स्वदेशाद्, गत्वा पत्न्या सह निवसतिं पाकभूमावकार्षीत्।
तत्रैवासौ सुखमधिवसन् राजकीयञ्च कार्यं, कुर्वन् पाकाधिपतिप्रहितः काशिमागत्य तस्थौ॥ [15]

इस श्लोक में भारतीय व्यक्ति का भारत से पाकिस्तान जाने का कारण नौकरी को बताया गया है। अतः यहाँ काव्यलिङ्ग अलङ्कार है।

जातं वंशे रघुकुलमणेः सेवकानां प्रशस्ते, जानामि त्वां प्रकृतिसरलं सर्वलोकप्रियञ्च।
तेनार्थित्वं त्वयि कपिवरे दूरजानिर्गतोऽहं, याञ्चेयं मे सदयमनसा माननीया त्वयाऽऽद्य॥ [16]

प्रस्तुत् श्लोक में वानर को श्रीराम के सेवकों अर्थात् हनुमान् के वंश में उत्पन्न होना, उदार एवं प्रिय होना और प्रिय पत्नी के दूर देश में होने रूप कारणों को सन्देश भेजने रूप कार्य के प्रति कारण बताया गया है। अतः यहाँ काव्यलिङ्गालङ्कार है।

रुपकालङ्कार - भिन्न भिन्न प्रकट होने वाले उपमान तथा उपमेय का अभेदारोप (कल्पित अभेद) ही रुपक अलङ्कार कहलाता है।[17] यह अभेदारोप अत्यन्त साम्य के कारण होता है। उपमेय तथा उपमान में अतिसादृश्य उपस्थापित करने से ही इस अलङ्कार के द्वारा चमत्कार उत्पन्न होता है।

आसन्नायां शरदि कमलामोदसम्पूरितायां, दूरीभूतां हृदयदयितां हर्षसंदोहदात्रीम्।
स्मारं स्मारं विकलकरणो ध्यानमग्नः स तन्वीं, शोकाम्भोधिं नयनसलिलैर्वर्धयामास शश्वत्॥ [18]

कमलामोद से पूरित शरद कालीन ऋतु के पास आने पर प्रवासी को अपनी प्रिया की याद व्याकुल कर देती है और वह उसका ध्यान कर हृदय के शोकसागर को सदा बढाया करता था। यहाँ शोक उपमेय और अम्बुधि उपमान में अभेदारोप होने से यहाँ पर शोकाम्भोधि पद में रूपकालङ्कार हुआ है, इसी प्रकार "नयनसलिल" पद में नयन उपमेय तथा सलिल उपमान में अभेदारोप होने से रूपकालङ्कार है।

ताञ्चावश्यं विगतशरणां चिन्तयन्तीं सदा मां, साध्वीं धन्यां त्वमतिचतुरो भ्रातृजायां प्रपश्येः।
आशावल्ली नवसहचरी मे प्रियाया इदानीं, कृच्छ्रे काले कथमपि सखे ! जीवनाधारभूता॥ [19]

इस श्लोक में विरह दिवसों के समय आशारूपी लता को प्रवासी ने अपनी पत्नी के लिए नवीन सखी बताया है अतः "आशा" उपमेय पर "वल्ली" (लता) उपमान का अभेदारोप हुआ है अतः यहाँ रूपकालङ्कार स्पष्ट परिलक्षित हो रहा है।

यथासङ्ख्यालङ्कार - जहाँ पर क्रम से कहे हुए पदार्थों का उसी क्रम से समन्वय (सम्बन्ध) होता है, वहाँ यथासंख्य अलंकार होता है।[20]

वाराणस्यां त्वमसि वसतां प्राणिनां सौख्यहेतुः, शम्भो ! कस्माच्चरणपतिते मय्युपेक्षा तवास्ते ।
तस्माद् दैवाद् विगतमधुना देहि नाथ ! त्रिवर्गं पश्चान्मोक्षं क्षपितवयसे मे दयालो ! ददीथाः॥ [21]

यहाँ इस श्लोक में प्रवासी के द्वारा भगवान् विश्वनाथ से क्रमशः पुरूषार्थ चतुष्ट्य अर्थात् धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष की याचना की गयी है। अतः यथासंख्यालङ्कार है।

उत्प्रेक्षालङ्कार - जब वर्णनीय वस्तु (उपमेय) में सदृश वस्तु (उपमान) की सम्भावना की जाती है तो उत्प्रेक्षा अलङ्कार होता है।[22] सम्भावना से तात्पर्य है किसी वस्तु के यथार्थ

---

15 प्लव. १।१

16 वही १।२२

17 तद्रूपकमभेदो यः उपमानोपमेययोः। का.प्र. १०।१३९

18 प्लव. १।५

19 वही १।२७

20 यथासंख्यं क्रमेणैव क्रमिकाणां समन्वयः। का.प्र. १०।१०८ डा.पारसनाथ द्विवेदी पृ॰ सं॰ ६१६

21 प्लव. १।१२

22 सम्भावनमथोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य समेन यत् । का. प्र. १०।१३७

रूप को जानते हुए भी उसमें अन्य वस्तु की कल्पना करना। उत्प्रेक्षा में मन्ये, शङ्के, ध्रुवम्, प्रायः, नूनम्, अवैमि, ऊहे, सम्भावयामि, स्यात् तथा इव आदि शब्दों का प्रयोग किया जाता है।

सीमाप्रान्तप्रथितनगरं गच्छ शीघ्रं त्वमग्रे, सैन्यस्थानं
पुरुषपुरकं सर्वतोऽक्षि प्रहिण्वन्।
यातायातानहितहितकान् खैवरेणाध्वनैत-न्नूनं
पश्यत्यखिलमनुजानप्रमत्तं स्थितं सत्॥ [23]

इस श्लोक में कवि द्वारा प्रयुक्त सम्भावना मनोहारिणी बन गयी है। यहाँ पर उत्टकोपमेयस्वरूप नगर में उपमान प्रहरी के रूप में की गयी सम्भावना सौन्दर्य धारण कर रही है। यहाँ "यातायातान् मनुजान् पश्यति" इस प्रहरी की क्रिया की मानों नगरी में किया गया सम्भावन व्यापार उत्प्रेक्षा का बीजस्वरूप प्रकट हुआ है अतः यह पद्य सरसता के साथ अलङ्कृत होकर सहृदयों को मोहित कर रहा है।

भ्रान्तिमान् अलङ्कार - सादृश्यता के कारण जहाँ पर एक वस्तु को देखकर अन्य वस्तु का निश्चयात्मक ज्ञान होता हो और वह कवि की प्रतिभा से प्रकट हो रहा हो तो वहाँ पर भ्रान्तिमान् अलङ्कार होता है।[24] कवि ने प्रवासी की विरह वेदना को बताते हुये एक प्रस्तुत किया है जिसमें भ्रान्तिमान् अलङ्कार को देखा जा सकता है -

कान्तं कान्तामुखमिति धिया फुल्लपद्मं विलोक्य, मुग्धो
मुग्धे ! तव सहचरः संतपन् वापिकायाम् ।
हा हा ! कश्चिद् ब्रुडति पथिकः शङ्कितैरेवमुक्तो, लज्जापात्रं
स्मृतिमुपगतस्ते प्रियो बोभवीति॥ [25]

प्रस्तुत पद्य में प्रवासी बाबली में खिले कमल को देखकर उसमें अपनी प्रियतमा के मुख का भ्रम कर लेता है और उसकी ओर दौड़ पड़ता है। अतः यहाँ प्रस्तुत (उपमेय) "पद्मकमल" को देखकर अप्रस्तुत (उपमान) "प्रियामुख" का ज्ञान होने से, भ्रान्तिमान् अलङ्कार है।

अर्थान्तरन्यासालङ्कार - मम्मट के अनुसार जहाँ पर सामान्य का विशेष के द्वारा अथवा विशेष का सामान्य के द्वारा समर्थन होता है, वह अर्थान्तरन्यास अलङ्कार होता है। यह साधर्म्य अथवा वैधर्म्य से दो प्रकार का होता है।[26] किसी एक पर लागू होने वाला तथ्य विशेष कहलाता है और सर्वसाधारण पर लागू होने वाला तथ्य सामान्य कहलाता है। समान धर्म वाले वाक्य से समर्थन होने पर साधर्म्य समर्थन तथा विपरीत धर्म से समर्थन होने पर वैधर्म्य समर्थन कहलाता है।

प्लवङ्गदूतम् में प्राप्त अर्थालङ्कार से युक्त पद्य इस प्रकार हैं –

श्रावं श्रावं विकलहृदयो मारकाटप्रसङ्गं, सन्देशं स
त्वरितगतिना मर्कटेन प्रहिण्वन् ।
नाशोचत्तां विरहविधुरां लप्स्यतेऽयं न वेत्ति, शोकाक्रान्ता
विकृतिमयते कस्य पुंसो न बुद्धिः?[27]

यहाँ प्रकृत श्लोक में अर्थान्तरन्यास अलङ्कार दर्शनीय है। इस पद्य में कवि द्वारा वर्णित प्रवासी की हृदय व्याकुलता के साथ शोकाक्रान्त बुद्धि का साधर्म्य वर्णित हुआ है तथा यहाँ पर प्रयक्त "युद्धक्रान्त प्रवासी के हृदय की व्याकुलता" इस विशेष का "किस शोकाक्रान्त व्यक्ति की बुद्धि विकृत नहीं होती" इस सामान्य से समर्थ्य–समर्थकभाव है। अतः यहाँ अर्थान्तरन्यासालङ्कार स्पष्ट है।

सर्वं कष्टं विलयमचिराद् यास्यतीशप्रसादा-दित्याश्वस्तः
प्रणयिहृदयो जीवनं रक्षति स्वम्।
धीरेऽधीरा त्वमपि न भवेर्ज्ञासम्पन्नशीले,
शान्ताशान्तोभयविधदशा प्राणिनां दैवतन्त्रा॥ [28]

उक्त पद्य में कवि द्वारा प्रवासी के हृदय विह्वलता को प्रकट करते हुये अर्थान्तरन्यास अलङ्कार का प्रयोग सुव्यवस्थित रूप से भावार्थ को प्रशस्त कर रहा है। यहाँ पर प्रयुक्त इस छन्द में प्रथम तीन चरणों में विशेष स्वरूप प्रेमपूर्णहृदयवान् प्रिय, ईश्वर कृपा विघ्ननिवारक इत्यादि कथनों से स्वपत्नी का कवि ने अपनी कविचातुरी के माध्यम से "सुखदुःख की स्थिति भाग्याधीन है" इस सामान्य से समर्थ्य–समर्थक भाव द्वारा समर्थन अत्यन्त मनोरम है। यह समर्थन साधर्म्य के

---

[23] प्लव. १।७४

[24] साम्यादतस्मिंस्तद्बुद्धिर्भ्रान्तिमान् प्रतिभोत्थितः। सा. द. १०।३६

[25] प्लव. २।१९

[26] सामान्यं वा विशेषो वा तदन्येन समर्थ्यते।
यत्तु सोऽर्थान्तरन्यासः साधर्म्येण परेण वा ॥ का. प्र. १० सू. सं॰ १६५ पारसनाथ द्विवेदी पृ॰ सं॰ ६१६

[27] प्लव. १।२०

[28] वही २।२७

द्वारा प्रस्तुत हुआ है जो अर्थान्तरन्यासालङ्कार का मुख्य तत्व है।

समुच्चयालङ्कार - समुच्चय अलङ्कार वह है, जहाँ प्रस्तुत कार्य की सिद्धि के एक साधक के रहने पर अन्य साधकों या कारणों का होना कहा जाता है।[29] अर्थात् जहाँ एक हेतु से कार्य के सिद्ध हो सकने पर भी खलेकपोत (खलिहान में एक साथ दाना चुगने के लिए आने वाले कबूतरों की भाँति) न्याय से अनेक कारणों का वर्णन किया जाता है,वहाँ समुच्चय अलङ्कार होता है।[30]

आयातीयं प्रकृतिविनता नैचिकी ते पथाग्रे, शीतो वायुः
प्रवहति सुखस्पर्शवान् संमुखीनः।
रूपाजीवा हसितवदनाऽऽभूषणाभूषिताङ्गी, तस्माज्जाने
नुदति शकुनस्त्वामितः सम्प्रयातुम्॥ [31]

यहाँ इस श्लोक में प्लवङ्ग के यात्रा हेतु गमनार्थ शुभसङ्केतों को बताया गया है। सन्देशसम्प्रेषणार्थ रूप कार्य की सिद्धि हेतु सम्प्रेष्य स्थल पेशावर की ओर जाने में एक ही कारण पर्याप्त था परन्तु यहाँ पर गाय का दर्शन, हवा का अनुकूल होकर बहना और सामने हँसती हुई वेश्या का दिखलायी देना आदि अनेक कारणों का प्रतिपादन होने से समुच्चयालङ्कार है।

उदात्तालङ्कार - उदात्त वह अलङ्कार है जहाँ किसी वस्तु (धन, शौर्य आदि) की असम्भावित समृद्धि का वर्णन किया जाता है तथा वहाँ भी उदात्तालङ्कार होता है तथा जहाँ पर किसी वर्णनीय अर्थ में उदारचरितों का अङ्गरूप में वर्णन किया जाता है।[32]

जातं वंशे रघुकुलमणेः सेवकानां प्रशस्ते, जानामि त्वां
प्रकृतिसरलं सर्वलोकप्रियञ्च।
तेनार्थित्वं त्वयि कपिवरे दूरजानिर्गतोऽहं, याञ्चेयं मे
सदयमनसा माननीया त्वयाऽऽद्य॥ [33]

प्रस्तुत पद्य उदात्तालङ्कार के प्रयोग से रस का सम्वर्धन कर रहा है। इस श्लोक के प्रथम दो चरणों में राम जैसे महान् व्यक्ति के सेवकों अर्थात् हनुमान् के चरित्र का वर्णन कवि के द्वारा किया है, जिसके कारण यह छन्द सहृदयजनों के चित्त को झटिति आकृष्ट कर रहा है। अतः यहाँ उदात्तालङ्कार स्पष्ट ही है।

स्मरणालङ्कार - पूर्व दृष्ट वस्तु समान अन्य वस्तु को देखने पर पूर्वानुभूत वस्तु की स्मृति होना स्मरणालङ्कार है।[34] अर्थात् जो पदार्थ किसी आकार विशेष से निश्चित है और जब कभी अनुभव किया गया हो वह कालान्तर में स्मृति (संस्कारों) के उद्बोधक उसके समान अन्य वस्तु के देखने पर जो उसी रूप में स्मरण किया जाता है, वह स्मरणालङ्कार है।

श्रुत्वा सीतां प्रति हनुमता वाचिकं प्राप्यमाणं, श्रीरामेण
व्यथितमनसा सोऽतिचिन्तानिमग्नः।
दृष्ट्वा चाग्रे कमपि सहसाऽऽगत्य तत्रोपविष्टं, शान्तं सौम्यं
परमसरलं हर्षमाप प्लवङ्गम्॥ [35]

प्रस्तुत श्लोक में प्रवासी के द्वारा राममन्दिर में रामकथा सुनने के प्रसङ्ग में हनुमान के द्वारा सीता जी के पास सन्देश ले जाने की बात सुनता है तभी "सीता" यह नाम सुनकर इसे अपनी पत्नी सीता की स्मृति आ जाने से स्मरणालङ्कार है।

प्लवङ्गदूतम् में प्रयुक्त मिश्रालङ्कार

शीर्षे गङ्गा भरतवसुधां पावयन्ती तवास्ते, ध्वान्तध्वंसे
पटुतरकरश्चन्द्रमाश्चैव भाले।
भार्या चार्या सदयहृदया पूजिता मातृवृन्दैः,
सूनुर्विघ्नव्रततिपरशुर्देवसेनाधिपश्च॥ [36]

इस श्लोक में भगवान् शङ्कर की स्तुति करते हुये बताया गया है आपके पुत्र गणेश विघ्नव्रतति अर्तात् विघ्नरूपी लताओं को काटने के लिये परशु के समान शक्तिशाली है। अतः यहाँ प्रस्तुत विघ्न उपमेय पर अप्रस्तुत व्रतति उपमान

---

[29] तत्सिद्धिहेतावेकस्मिन् यत्रान्यत्तत्करं भवेत्। समुच्चयोऽसौ,– का. प्र. श्रीनिवास शास्त्री पृ॰ सं॰ ५५४

[30] वही पृ॰ सं॰ ५५५

[31] प्लव. १।२५

[32] उदात्तं वस्तुनः सम्पत्। महतां चोपलक्षणम्॥ वही १०।११५ पृ॰ सं॰ ५५३

[33] प्लव. १।२२

[34] यथानुभवमर्थस्य दृष्टे तत्सदृशे स्मृतिः। स्मरणम् .....॥ का. प्र. १० सूत्र सं. १९९
पारसनाथ द्विवदी पृ. सं. ६७५

[35] प्लव. १।१९

[36] वही १।११

का आरोप शाब्द है। अतः एकदेश में ही आरोप स्पष्ट होने से यहाँ एकदेशविवर्तिसाङ्गरूपकालङ्कार प्राप्त है। उक्त पद्य में ही प्रयुक्त "सूनु उपमेय का परशु" उपमान से साधर्म्य वर्णित हुआ है यहाँ उपमा वाचक "इव" एवं साधारण धर्म विघ्न अपाकृतित्व अर्थ से गृहीत हैं अतः इस स्थल पर धर्मवाचकलुप्तोपमा रूपक के भेद विशेष के साथ प्रयुक्त हो संकर अलङ्कार की स्थिति को भी प्राप्त हो गयी है, तथा "भार्या चार्या सदयहृदया" पदों में "र् य्" की तथा "दय" इन निरर्थक वर्णों की एकबार आवृत्ति छेकानुप्रास को सहजता से सहृदय के हृदय को आह्लादित कर दे रही है।

मा ते शङ्का भवतु हृदये नास्तिकस्येव काचित्,
लोकेऽन्यस्मिन् फलति किमिदं दत्तमत्रार्थिहस्ते।
दुरीकर्तुं प्रभवति पुरा याचकस्यैव दुःखं, दानं
पश्चान्निरयजनितं दीर्घमेतत् प्रदातुः॥ [37]

प्रस्तुत इस श्लोक के प्रथम चरण में आये "मा ते शङ्का भवतु हृदये नास्तिकस्येव" में उपमालङ्कार है। यहाँ "हृदय" उपमेय का "नास्तिक" उपमान से "इव" उपमावाचक शब्द के द्वारा "शङ्कितवान्" साधारणधर्म से सादृश्य वर्णित हुआ है। जिसके फलस्वरूप समासगा श्रोती पूर्णोपमा स्पष्ट है तथा "इस लोक में प्रदत्त द्रव्य परलोक में फलवान् होता है" इस विशेष का "दान दाता के इहलौकिक एवं पारलौकिक दुःखों का हरण करने वाला है" इस सामान्य से साधर्म्य पुरस्सर समर्थ्य–समर्थकभाव का अर्थान्तरन्यास अलङ्कार व्यक्त हो रहा है। प्रकृत श्लोक में उक्त दोनों अर्थालङ्कारों की स्थिति निरपेक्षता से विद्यमान होने के कारण संकर अलङ्कार की वाचिका है।

इस तरह देखा जा सकता है कि इस दूतकाव्य में शब्दालङ्कारों में अनुप्रास एवं अर्थालङ्कारों में उपमा, रूपक, काव्यलिङ्ग, अर्थान्तरन्यास, विशेषोक्ति, उदात्त आदि अलङ्कार अपृथग्यत्ननिर्वृत्य रूप में अवतरित हुये हैं। जिससे काव्य की शोभा में अपूर्व चमत्कृति दिखलायी देती है।

सन्दर्भ

1. प्लवङ्गदूतम् - पाठक वनेश्वर, सुबोधग्रन्थमाला कार्यालय, राँची, १९७६.
2. काव्यप्रकाश, श्रीनिवास शास्त्री, सुभाष बाजार, मेरठ, १९६०.
3. काव्यप्रकाश, पारसनाथ द्विवेदी, विनोद पुस्तक मन्दिर डा. रांगेय राघव मार्ग, आगरा, १९८६

[37] वही १।४३